|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

1/2 (श्लोक 1-7), शनिवार, 06 जनवरी 2024

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/3werzA5AnHE

सद्गुणों व दुर्गुणों का ज्ञान

दीप प्रज्वलन एवं गुरु वन्दना के साथ इस अत्यन्त पावन एवं ज्ञानवर्धक अध्याय का प्रारम्भ हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान हम प्राप्त कर पा रहे हैं, यही हमारा भाग्योदय है। गीता के सोलहवें अध्याय में आसुरी और दैवीय सम्पदा के बारे में बताया गया है। यह गुणों की सम्पदा का अध्याय है। किस तरह कौन सी सम्पदा को ग्रहण करना और कौन सी सम्पदा को छोड़ना है? किन दुर्गुणों का त्याग करना है? इन सब गुणों और दुर्गुणों की सूची भगवान ने यहाँ बताई हैं।

सद्गुणों की साधना में ध्येय ज्योति नित्य जले।
संग्राम मय धरा पर विजय रथ हम ले चलें।।

सद्गुणों की साधना करने के लिए ही हमें मनुष्य जन्म मिला है। हमें कौन से गुण को ग्रहण करने चाहिए, यही ज्ञान इस अध्याय में दिया गया है। गीता की रचना इस प्रकार की गई है कि जब हम प्रथम अध्याय पढ़ें तो उसमें अर्जुन की स्थिति का वर्णन है। दूसरे अध्याय में अर्जुन को गीता का ज्ञान दिया है। उसके बाद हमें आत्म तत्त्व के बारे में भी बताया गया है। उसके बाद सोलहवें अध्याय में दैवी और आसुरी सम्पदा को बताया गया है।

16.1

श्रीभगवानुवाच
अभयं(म्) सत्त्वसंशुद्धिः(र्), ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं(न्) दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।16.1।।

श्रीभगवान बोले – भय का सर्वथा अभाव; अन्तःकरण की अत्यंत शुद्धि; ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति; सात्त्विक दान; इन्द्रियों का दमन; यज्ञ; स्वाध्याय; कर्तव्य-पालन के लिये कष्ट सहना और शरीर-मन-वाणी की सरलता।

विवेचन- भगवान सद्गुणों की सूची का प्रारम्भ इस अध्याय में कर देते हैं। सबसे पहला सद्गुण भगवान बताते हैं-

अभय- इस गुण को सारे गुणों का सेनापति कह सकते हैं, यह सबसे आगे है। अभय मतलब भय रहित, किसी का भी भय नहीं

लगना। निर्भयता का भी विवेक होता है कि वास्तव में कौन सी बात का भय लगना चाहिए और कौन सी बात का भय नहीं लगना चाहिए। यह भी एक विवेक है। बिजली के तार को स्पर्श करने का भय लगना ही चाहिए। उसको स्पर्श नहीं करना चाहिए, किन्तु सामान्य रूप में किसी भी बात का भय नहीं लगना, उसको निर्भय कहते हैं एवं अभय मतलब उसको किसी का भय नहीं लगता एवं न ही किसी को उससे भय लगता है।

सन्त तुकाराम महाराज पहाड़ पर जाते थे तो पक्षी आते लेकिन उनको देखकर भाग जाते। तुकाराम महाराज को बुरा लगता था कि मुझ में ही कुछ कमी है, यह पक्षी मेरे पास नहीं आते। फिर उन्होंने साधना इस तरह से की, कि पक्षी उनके पास आकर बैठने लगे। यहाँ साधना है कि न पक्षियों को उनसे भय हो और न उनको पक्षियों से।

भय भी कई प्रकार के होते हैं। मनुष्य भोग लेता है तो उसे डर लगता है कि उसे कहीं रोग न हो जाए, हमें व्यञ्जन अच्छे लगते हैं, किन्तु मन में आ जाता है कि कई मेरा पेट न बिगड़ जाए, किसी के कुल का नाम बहुत बड़ा हो गया है तो कहीं मेरे कुल का नाम बिगड़ न जाए, बहुत ज्यादा धन जमा कर लिया जाए तो राजा का या टैक्स का भय लगने लगता है। जो शास्त्र सीख लेता है, उसे भय लगता है कि कहीं वाद-विवाद में लोग मुझे परास्त तो नहीं कर देंगे, गुण प्राप्त होते हैं तो उन्हें खोने का भय लगता है। सुन्दर रूप प्राप्त होता है तो बुढ़ापे का भय लगता है। इस तरह कई अलग-अलग तरह के भय हैं। इनसे स्वयं को एवं दूसरे प्राणियों को भी मुक्त रखना, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है, इसलिए इसे सबसे पहले रखा गया है।

हमारा अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो। गलत विचार भी मन में नहीं आना चाहिए । अपना मन एवं बुद्धि शुद्ध हो इसके लिए सन्तों ने हमें बहुत सी बातें दे रखी हैं।

सन्त समर्थ रामदास स्वामी ने **मनाचे श्लोक** में अपने मन को क्या समझना है? क्या सीखना है? इसलिए मन के और के लिए मन के श्लोक लिखे, जो हमारे मन को शुद्ध करते हैं ।

ज्ञान- शब्द का अर्थ है तत्त्व ज्ञान। तत्त्व ज्ञानी - भगवान के भाव का ज्ञान, अर्थात तत्त्व ज्ञान उसे है, जो ज्ञान में, योग में उसको जानता है। परमात्मा के साथ आकाश कितना बड़ा है? वह आकाश ही बता सकता है। इस तरह परमात्मा को जानने के लिए, जब तक उनके साथ एकरूप नहीं होगा, तब तक उनको जाना नहीं जा सकता। अतः उन परमात्मा को जानने के लिए, सद्गुणों का होना जरूरी है। यह सब सद्गुणों का शिखर है, जिनके साथ मनुष्य भगवान से एकरूप हो सकता है।

दान- भी तीन प्रकार के होते हैं- तामसिक, राजसिक एवं सात्त्विक। दान इस तरह से होना चाहिए कि दाहिने हाथ से दिया गया दान बाएँ हाथ को भी पता न चले। बहुत ज्यादा दिखावा करके दान नहीं देना चाहिए। जहाँ पर जिस बात की आवश्यकता है वहीं पर वह दान देना ज्ञान कहलाता है।

ऐसी देनी देंन ज्यूँ कित सीखे हो सैन ,
ज्यों-ज्यों कर ऊँच्यो करो त्यों-त्यों नीचे नैन।

राजा से पूछते हैं कि राजा ऐसा दान देना कहाँ से सीखे हो? जैसे-जैसे आप अपना हाथ दान देने के लिए ऊँचा करते जाते हो, वैसे-वैसे आपके नैन नीचे होते जाते हैं।

राजा कहते हैं-

देनहार कोई और है देत रहत दिन रेन।
लोग भरम मो पे करें ताते नीचे नैन।

अरे! देने वाला तो कोई और है, जो कि दिन रात दे रहा है। लोग मुझ पर भ्रम कर रहे हैं कि मैं दे रहा हूँ, इसलिए मैंने नैन नीचे रखें है। इसलिए शर्म से मेरे नैन नीचे हैं। यह दान मैं नही दे रहा हूँ, का भाव रखते हुए दिया गया दान सात्त्विक दान है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना,उनका दमन करना भी दान ही है।

यज्ञ- श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान का प्रिय शब्द है। अपने कर्मों का पालन, कोई अपेक्षा न रखते हुए करना यज्ञ कहलाता है। कर्त्तव्य मतलब जो करने के लिए योग्य है। क्या कर्त्तव्य कर्म मुझे करना है? इसका ज्ञान ही यज्ञ है।

स्वाध्याय- अर्थात अलग-अलग विषयों का अभ्यास या अध्ययन। शास्त्रों के अध्ययन द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करना। मैं क्यों आया हूँ? इन सभी बातों को जानने का प्रयास करना एवं परमात्मा को जानने के लिए जो अध्ययन किया जाता है, वह स्वाध्याय कहलाता है। अभ्यास करने के लिए शरीर को कष्ट भी देना पड़ता है। गर्मी और ठण्ड भी सहन करनी पड़ती है। कुछ बातें छोड़नी पड़ती है।

तप-कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए कष्ट जो सहने पड़ते हैं उनको कहा जाता है तप। मुख्य रूप से जीविका और एक होती है उपजीविका। उपजीविका का मतलब हमारे पेट के, लिए हमारी घर गृहस्थी के लिए कुछ धन कमाना। यह हमारा कर्त्तव्य है।

आर्जवम्- अन्तःकरण की सरलता है आर्जवम्।अर्जुन नाम उसी से रखा गया है। अर्जुन सरल है एवं अन्तःकरण से शुद्ध है। स्वामी जी ने एक बार उदाहरण दिया था अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट का। उन्होंने सद्गुणों की एक सूची बना रखी थी। सद्गुणों की साधना में वे रोज एक नए गुण का पालन करते थे। अतः राष्ट्रपति रूजवेल्ट का यह अच्छा गुण है। सम्पूर्ण विश्व से अच्छे गुणों का ज्ञान होना ही साधना है। किन गुणों का हम पालन कर सकते हैं? आत्मसात कर सकते हैं? हम किस तरह से उसका अभ्यास कर सकते हैं? यह जीवन में लाना ही गीता का ज्ञान है। **गीता पढ़े, पढ़ायें एवं जीवन में लायें। यह गीता का त्रिसूत्र हमें जीवन में लाना है।**

16.2

अहिंसा सत्यमक्रोध:(स्), त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) ह्रीरचापलम्।।16.2।।

अहिंसा, सत्य भाषण, क्रोध न करना, संसार की कामना का त्याग, अन्तःकरण में राग-द्वेष जनित हलचल का न होना, चुगली न करना, प्राणियों पर दया करना, सांसारिक विषयों में न ललचाना, अन्तःकरण की कोमलता, अकर्तव्य करने में लज्जा, चपलता का अभाव।

विवेचन-अहिंसा-अपने शब्दों से भी किसी का मन नहीं दुखाना। अगर हम गलत शब्द भी बोलेंगे तो किसी के मन को ठेस लगेगी, किन्तु अपने कर्त्तव्य और धर्म का पालन करते हुए, जैसे- मातृ धर्म, पितृ धर्म, राष्ट्र धर्म यह सब कर्त्तव्य पालन के लिए कोई हिंसा भी करनी पड़ती है तो वह अहिंसा कहलाती है।

किसी आतङ्कवादी को मारना, अहिंसा ही कहलाएगी। उसे जो फाँसी की सजा सुनाई जाएगी वह अहिंसा ही है। जल्लाद का कर्त्तव्य है जिसे सजा हुई है, उसे फाँसी पर लटकाना। न्यायाधीश का कर्त्तव्य है उसे सजा सुनाना। अपने कर्त्तव्य के पालन के रूप में हिंसा करनी पड़ती है तो वह भी अहिंसा ही है। हमारे देश की रक्षा करने के लिए सीमा पर हमारे जवान लड़ते हैं। देश की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है, अतः वह भी अहिंसा है।

सत्य- बोलना चाहिए किन्तु कैसा बोलना चाहिए? सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए। यदि सत्य अप्रिय है तो किसी का दिल दुखाने के लिए नहीं बोलना चाहिए। दूसरों को प्रिय लगता है, इसलिए असत्य भी नहीं बोलना चाहिए। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि सत्य बोलना चाहिए, कम बोलना चाहिए। ऐसे शब्द होने चाहिए मानो अमृत की लहरें आ रही हैं।

अक्रोध- क्रोध नहीं करना, हमारे सन्त ऐसे हैं कि शिष्य की परीक्षा लेते हैं कि वह क्रोधित होते हैं क्या? माँ अपने बच्चों पर क्रोध करती है या शिक्षक अपने शिष्यों पर, तब वह क्रोध नहीं कहलाता है। क्रोध कब करना चाहिए? यह जानना जरूरी है।

त्याग- कार्य करके, अपने अहं का त्याग करना है। मैंने यह कार्य किया इसका त्याग करना है। जब कार्य में गलती हो जाती है, हम कहते हैं भगवान आपने यह मुझसे क्या कराया? किन्तु जब अच्छे कार्य करते हैं, तब कहते हैं कि हमने किया। **अच्छे कार्य**

करते जाएं एवं श्रेय भगवान को अर्पण करते जाना यह त्याग है।

शान्ति- प्राप्त करने के लिए, अन्तःकरण से उस परमात्मा में चित्त लग जाएगा तब जो प्राप्त होता है वह अत्यन्त शान्ति होती है।

दया- सभी के प्रति दया का भाव रखना, हमारी संस्कृति ऐसी है कि नीचे पड़ी वस्तु को पाँव लग जाए, तब भी हम दुःखी हो जाते हैं। हमारी संस्कृति में सुबह उठकर धरती माता पर पैर रखते हैं तब भी प्रार्थना की जाती है। हम धरती माता से क्षमा माँगते हैं। इन्द्रियों को आसक्त नहीं होने देना। इन्द्रियों से देखना-सुनना तो पड़ेगा, किन्तु उनके साथ रहते हुए, आसक्त नहीं होना है। मन के द्वारा उनमें चिपकेंगे नहीं।

मार्दवम्- अर्थात घास का तिनका भी पैर के नीचे आ जाए तो दुःख होना।

ह्री- अकर्त्तव्य को करने में लज्जा का आना।

अचापलम- चपलता का मतलब चञ्चलता। व्यर्थ क्रियाएँ न करना अचापलता है। किन-किन गुण को अपनाना है यह सूची हमें भगवान के द्वारा दी गई है।

16.3

तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत।।16.3।।

तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, वैर भाव का न होना (और) मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन ! (ये सभी) दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन- हे भारतवंशी अर्जुन! दैवीय सम्पदा का एक गुण है-

तेज- जिसका भाव है प्रभाव। जब कोई हाथी उन्मत्त हो जाता है और उसी समय सिंह गर्जना हो जाती है तो वह उन्मत्त हाथी भी अपना पैर नीचे रख देता है। यहाँ इस गर्जना का भाव है तेज। अंग्रेजी में एक शब्द होता है **Aura** इसका मतलब होता है- **तेज, प्रभाव**। जब हम सन्तों के प्रभाव में आते हैं तो बुरे से बुरा व्यक्ति भी अपने दुर्गुण छोड़ देता है। यह दैवीय सम्पत्ति है।

क्षमाशीलता- सन्तों का गुण है। कर्त्तव्य और क्षमाशीलता में अन्तर है। श्रीमद्भगवद्गीता सभी को क्षमा करती है। स्वयं भगवान कहते हैं कि कितना भी दुराचारी व्यक्ति हो, जब वह भगवान की शरण में आ जाता है या श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने लगता है, तो उसमें सद्गुण अपने आप आ जाते हैं।

धैर्य- सङ्कट के समय धैर्य रखना। कुछ समय कभी-कभी स्वयं को रोक सकना, यह भी धैर्य है।

शिवाजी महाराज पर जब अफजल खान ने आक्रमण किया तो वह एक-एक मन्दिर तोड़ते-तोड़ते उनके पास आ रहा था, दुष्कर्म कर रहा था। लोगों को मारता जा रहा था, लोगों को लग रहा था कि शिवाजी महाराज आकर उन्हें बचाएँगे, किन्तु शिवाजी महाराज नहीं आए। इसलिए नहीं गए, क्योंकि जो सेना वह लेकर आया था वह बहुत बड़ी थी। यदि उस समय आक्रमण करते तो वह सेना को समाप्त नहीं कर पाते। धीरे-धीरे वह सेना कम होती गई और अफजल खान अन्दर आता गया। शिवाजी महाराज ने तब भी उस पर आक्रमण नहीं किया और उसको वहाँ तक आने दिया। यहाँ पर आने के बाद उस पर आक्रमण किया और उसे समाप्त किया। कहाँ पर क्या करना है? यह जानना भी अपने आप में धैर्य है। **बीच में खुद को रोकने की शक्ति को ही धैर्य कहते हैं।**

शुचिता- अर्थात स्वच्छता, पवित्रता एवं शुद्धता। गिलास में जल रखा है, वह जल शुद्ध तो है किन्तु उसमें वायरस है। वह स्वच्छ

है किन्तु शुद्ध नहीं है। यदि पता चलता है कि वह स्वच्छ है, पवित्र है एवं शुद्ध भी है तो वह गङ्गाजल है। यह सभी बातें एकत्रित होती हैं तो वह शुचिता कहलाती है। **अन्दर और बाहर से एक ही होना शुचिता है।**

अद्रोहः- किसी के भी प्रति द्वेष का भाव नहीं रखना, शत्रु के प्रति भी नहीं। द्वेष का भाव है और वह सन्त हो, ऐसा हो नहीं सकता। प्रभु श्री रामचन्द्र ने रावण को मारा, वह कर्त्तव्य था। मारने के पश्चात् उन्होंने विभीषण को उनका अन्तिम संस्कार करने को कहा। विभीषण ने कहा कि ऐसे दुष्ट का अन्तिम संस्कार, मैं नहीं कर सकता। प्रभु ने बोला तुम्हारा नहीं, मेरा भाई समझ कर इसका अन्तिम संस्कार करो। यह भाव होना ही अद्वेष्टता है।

अभिमान - अर्थात स्वयं के बारे में ज्यादा मान हेना। मान, सम्मान, पद प्रतिष्ठा के होने के बाद भी अभिमान न करना।

यह दैवीय सम्पदाएँ जिस व्यक्ति में हैं उसके सारे लक्षण हैं। यह सब होने पर वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

16.4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।
अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।।16.4।।

हे पृथानन्दन ! दम्भ करना, घमण्ड करना और अभिमान करना, क्रोध करना तथा कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - (ये सभी) आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन-
दम्भ- का अर्थ है जो सद्गुण मुझ में नहीं है वह दिखाने का प्रयास करना, दिखावा करना। दम्भ मतलब घमण्ड। जब घमण्ड आता है तो हमारी भाषा बदल जाती है। हम किस तरह की भाषा का प्रयोग कर रहे हैं? उसमें अहङ्कार झलकने लगता है। हमारे अन्दर भी एक दर्पण होना चाहिए, जो हमारे व्यवहार को देख सके, जिससे हम खुद को देख पाएँ।

मराठी में एक कहावत है कि दूसरों की छोटी सी गलती भी नजर आती है और खुद का मूसल भी नहीं दिखता। हमें अभिमान नहीं होना चाहिए, गर्व होना चाहिए। स्वाभिमान और अभिमान में भी अन्तर है। स्वयं को जानना स्वाभिमान है, कि हमें अपना अपमान भी नहीं करने देना है। क्रोध कब आना चाहिए? कब नहीं आना चाहिए? यह भी हमारे गुणों पर निर्भर है।

स्वामी विवेकानन्द जी का प्रसङ्ग है। जब वह अमेरिका जाने के लिए निकले तो दो अंग्रेज बातें कर रहे थे। भारतीय लोग तो भिखारी होते हैं, इन्हें कपड़े पहनते नहीं आता है और बहुत कुछ अपशब्द बोल रहे थे। विवेकानन्द जी विचलित नहीं हुए, वह शान्त बैठे हुए थे। जैसे ही उन्होंने भारत माता के लिए अपशब्द बोलना चालू किया, विवेकानन्द जी ने उन्हें बोला कि अगर अब तुमने एक भी शब्द बोला तो मैं तुम्हें उठाकर पटक दूँगा। वह कब क्रोधित हुए? जब भारत माता के लिए बोला गया। हमारे लिए कोई कुछ भी बोले तो फर्क नहीं, लेकिन देश के लिए नहीं सुनना चाहिए। हमें अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलना है, किन्तु हमें धर्म पर चलना है। राजा और न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि अपराधी को दण्ड देना ही पड़ेगा। सारे कर्त्तव्य कर्मों को करने वाला ही दैवीय सम्पदा के गुण वाला है।

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचन- दैवीय सम्पदा को अपनाकर ही मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति या मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यदि संसार के बन्धनों से

बाहर नहीं निकलना है, यदि बन्धन से मुक्त नहीं होना है तो आसुरी सम्पदा को अपनाइए।

अर्जुन को भगवान कहते हैं कि तुममें यह दैवीय सम्पदा है। तुम में अभिजात्य है, यह सद्गुण तुम्हारे अन्दर पूर्ण रूप से भरे हुए हैं। पूर्ण रूप से दैवीय सम्पदा अर्जुन में है। यदि भगवत् प्राप्ति करनी है तो पहले अर्जुन बनना होगा। इस सम्पदा को धारण करने के लिए हमें प्रयास करने पड़ेंगे। मेरा ध्येय क्या है? यह जानना है कि मुझे यह मनुष्य जन्म क्यों मिला है? मेरा अधिक अच्छा क्या हो सकता है? यह जानना ही ध्येय होना चाहिए। ध्येय हमेशा बड़ा रखना चाहिए। परम प्राप्ति के लिए क्या करना पड़ेगा? यही हमारा ध्येय ज्योति है। सभी श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ रहे हैं। यह दैवीय सम्पदा हम में भी है। यह भगवान की कृपा है कि श्रीमद्भगवद्गीता हम पढ़ रहे हैं। यह गुप्त और गोपनीय ज्ञान हमें मिल रहा है। हमारे अन्दर कुछ दैवीय सम्पदा के गुण होने के कारण ही यह हुआ है।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचन- श्रीभगवान भूतसमूह के दो भाग करते हैं। यह भाग जो हो रहे हैं, वह जाति रङ्ग या लिङ्ग के आधार पर नहीं कर रहे हैं। वह सिर्फ गुणों के आधार पर दैवीय और असुर सम्पदा का अन्तर बता रहे हैं। यहाँ पर सिर्फ दो ही प्रकार के लोग हैं- दैवीय और आसुरी। यह दोनों परिवर्तनशील हैं। दैवीय प्रकृति मनुष्य का पतन होकर वह आसुरी बन सकता है और आसुरी व्यक्ति अच्छे मार्ग पर जाकर दैवीय बन सकता है।
वह भक्त के लक्षण बता रहे हैं कि उसे किसका त्याग करना है? और किसका नहीं करना है?

भगवान कहते हैं कि हे पार्थ! आसुरी प्रवृत्ति क्या है यह भी अच्छे से समझ लो! इसके बाद आसुरी प्रवृत्ति का वर्णन भगवान विस्तार से करते हैं।

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन- कौन से काम करने हैं? कौन से काम नहीं करने हैं? जो कर्म करने हैं, उसकी प्रवृत्ति एवं जो काम नहीं करने हैं उसकी निवृत्ति। हमें जानना है कि हम कौन से कार्य कर सकते हैं, क्योंकि हम नहीं जानते हैं कि क्या नहीं करना चाहिए? जो नहीं करना चाहिए, वह कर बैठते हैं।

महाभारत के सन्दर्भ में प्रसङ्ग है कि अर्जुन और दुर्योधन दोनों के गुरु आचार्य द्रोण थे। एक ही गुरु से दोनों ने शिक्षा प्राप्त की। धर्म क्या है? कर्त्तव्य क्या है? सभी कुछ दोनों ने वहीं सीखा।

जानामि धर्मं न प्रवृत्तिं च,
जानाम्यधर्मं न च निवृत्तिं

दुर्योधन कहते थे कि कुछ तो बात है, जो मुझसे वैसा करवाती है, जैसा मुझे नहीं करना चाहिए। जो मुझे करना चाहिए, वह मैं

कर नहीं पाता। जो बात थी वह था काम, क्रोध एवं रजोगुण।

धर्म क्या है? यह जानने की प्रवृत्ति जिसमें है, वही मनुष्य है। आहार निद्रा, भय, मैथुन यह सब तो जानवर भी कर लेते हैं। इस सब को जानना कि धर्म क्या है? वही मनुष्य है, सद्गुणों की चर्चा करना अत्यन्त शुभ लगता है। दुर्गुणों पर बात करना कोई भी नहीं चाहता, किन्तु फिर भी यह अध्याय आसुरी और दैवीय सम्पदा पर बोला गया है, अतः दोनों को जान समझ कर ही हम आगे बढ़ेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ अत्यन्त ज्ञानवर्धक अध्याय का समापन हुआ।

: : **प्रश्नोत्तर** : :

प्रश्नकर्ता - दुलाल सरकार भैया
प्रश्न - सही और गलत का भेद जानते हुए भी गलत कार्य कार्य क्यों होते हैं?
उत्तर - अध्याय तीन में अर्जुन ने यही प्रश्न पूछा। श्रीभगवान बताते हैं-
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।3:37।।

कामनाओं के कारण और उन कामनाओं की पूर्ति न होने पर मनुष्य गलत रास्ते पर चल पड़ता है। कामना होना या कामना की पूर्ति करने का प्रयास गलत नहीं है। धर्मयुक्त कामना भी भगवान के ही कारण हैं-

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।7.11।।

धर्म - का अर्थ है कर्त्तव्य निर्वहन करना।
अर्थ - धर्मपूर्वक धनोपार्जन करना
काम - अर्थात् धर्मपूर्वक प्राप्त धन से कामनाओं की पूर्ति करना।
पुरुषार्थ - मोक्ष को प्राप्त करना है।
धर्म और मोक्ष को मुख्य लक्ष्य रखना चाहिए। हम अर्थ और कामना को प्रधानता देते हैं, तो गलत रास्ता धारण कर लेते हैं।

प्रश्नकर्ता - योगेश गोयल भैया
प्रश्न - भगवान शिव की उत्पत्ति कैसे हुई?
उत्तर- हम स्वयं की पूरी पीढ़ी नहीं जानते, भगवान शिव की कैसे जान सकते हैं?

शिवजी पार्वती विवाह के समय का प्रसङ्ग है। पुरोहित जी भगवान शिव से उनके पिता का नाम पूछते हैं। शिव कहते हैं कि मेरे पिता ब्रह्माजी हैं, फिर पुरोहित जी दादा का पूछते हैं। शिवजी भगवान ने विष्णुजी को अपना दादा बताया। परदादा का पूछने पर शिवजी कहते हैं, वह मैं ही हूँ। आरम्भ भी और अन्तिम सत्य शिव हैं।

सभी परमात्मा के ही रूप हैं। इसमें भ्रान्ति नहीं रखनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता - निखिल गीते भैया
प्रश्न - परिवार का त्याग किए बिना, मोहमाया त्याग किए बिना भगवान की भक्ति में लीन कैसे हो सकते हैं? संसार में रहते हुए, सांसारिक मोह-माया का त्याग किए बिना भगवान की भक्ति में कैसे लग सकते हैं?
उत्तर- यह सारा विश्व परमात्मा का रूप है। परमात्मा से प्रेम करने का अर्थ है, सारे विश्व से प्रेम करना। बारहवें अध्याय में है -

सर्वभूतहिते रताः

जो भगवान का सच्चा भक्त है, वह सभी भूत (भवति इति भूत:) प्राणियों में परमात्मा को देखता है। ग्यारहवें अध्याय में भगवान ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दर्शन दिया। विश्व में अच्छाई और बुराई सम्मिलित हैं। भगवान अर्जुन को कहते हैं, इन सब से प्रेम करना ही, मुझ पर प्रेम करना है।
मराठी कविता है -

खरा तो एकची धर्म जगाला प्रेम अर्पावे
जगी जे हीन अतिपतित, जगी जे दीन पददलित
तया जाऊन उठवावे, जगाला प्रेम अर्पावे
जयांना ना कोणी जगती सदा ते अंतरी रडती
तया जाऊन सुखवावे, जगाला प्रेम अर्पावे
समस्तां धीर तो द्यावा, सुखाचा शब्द बोलावा
अनाथा साह्य ते द्यावे, जगाला प्रेम अर्पावे

इसमें संसार छोड़ने की नहीं, अपितु संसार से प्रेम करने की प्रेरणा है। श्रीमद्भगवद्गीता के विषय में एक गलत प्रचार किया जाता है कि यह बच्चों को नहीं पढानी चाहिए। इससे बच्चों को संन्यास लेने की इच्छा हो जाती है। वे संसार का त्याग कर देते हैं। न तो गीता के प्रवक्ता भगवान श्रीकृष्ण संन्यासी हैं, न ही श्रोता अर्जुन संन्यासी बने हैं। किसी का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ता जाएगा, विस्तार जीवन का होता जाएगा।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्!!
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् !!

इस भाव को जागृत करने हेतु ही श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - रेवती रमेश दीदी
प्रश्न - झूठ बोलना पड़ता है तो कैसे पालन करें?
उत्तर - इस प्रकार का विवेक साधु महात्माओं के दृष्टान्त से लेकर, सत्य असत्य निर्धारण करना चाहिए।

सर्वभूतहिते रता:

सबके कल्याण के लिए जो बोला गया है, वह झूठ, झूठ नहीं रहता। भगवान को अर्पण करना। जो भी कार्य भगवद्भाव में करते हैं वह सत् हो जाता है।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।17.26।।

परमात्मा को मन में रखकर कार्य करना है। एक ही सत्य है, जिसके लिए यह किया जा रहा है, तब सब सत्य होगा।

प्रश्नकर्ता- अनिल भैया
प्रश्न- कटु व्यवहार को कैसे भूलें?
उत्तर- यह साधना का प्रवास है। एक दिन में इसका परिवर्तन नहीं आता। अध्याय छः आत्मसंयमयोग में उपाय बताया गया है -

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।

अर्जुन ने भगवान से कहा -

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।6.34।।

गीता को आचरण में लाना है। गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें।

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्य पराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानाम् इव वासवः॥

श्रीरामचन्द्र जी धर्म आचरण की मूर्ति हैं। जो श्रीराम ने अपने आचरण से दिखाया है, वही श्रीमद्भगवद्गीता में बताया है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||